International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 02-02-2020; Accepted: 16-02-2020; Published: 06-03-2020
Volume 2; Issue 1; 2020; Page No. 01-02

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीतिक चेतना

धर्मेन्द्र कुमार शर्मा
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

आज की मूल्यहीन, स्वार्थ प्रेरित राजनीति ने जीवन की हर चौखट को हिला कर रख दिया है। समाज का सम्पूर्ण ढाँचा चरमरा रहा है। जीवन का कहीं भी, कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है, जिसे आज की प्रदूषित राजनीति ने विकृत न किया हो। जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त भृष्टाचार, रिश्वतखोरी, कर्तव्य–विमुखता, स्वार्थों की अन्धी लड़ाई, चारित्रिक पतन, आडम्बर तथा अन्य–अन्य अनेक दूषण–प्रदूषण आज अत्यन्त घृणित रूप ले चुके हैं। ऐसे में उनको तराशकर उन्हें स्वस्थ–स्वच्छ बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए सत् साहित्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं हो सकता। देश और समाज के निर्माण में राजनीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। समकालीन हिन्दी कविता में राजनीतिक चेतना के अन्तर्गत राजनीति को लेकर जो व्यापक प्रवृत्तियाँ सामने आई हैं, वे समस्त विश्व को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रयासरत हैं। राष्ट्रीयता से ऊपर उठा हुआ समकालीन कवि अन्तर्राष्ट्रीयता को व्यक्त कर रहा है। यही कारण है कि किसी देश का सुख–दुःख समूचे विश्व का सुख–दुःख बन जाता है। समकालीन कवि राष्ट्रीय समस्याओं में तो रुचि रखता ही है, साथ ही आधुनिक विश्व की समस्याओं से भी अपने को जुड़ा पाता है। समकालीन कवियों ने संसद, चुनाव, राजनीति, शासन–व्यवस्था या शासन प्रणाली आदि नाम पर हो रहे सरकारी नाटकों का अपनी कविताओं के माध्यम से भाण्डाफोड़ किया और शासन द्वारा इन शब्दों के जाल में जनता को फंसाकर मूर्ख बनाने की नीति का खुलासा करते हुए जनता को इसके पीछे छिपी हुई वास्तविकता से अवगत कराया है। समकालीन हिन्दी कविता में प्रखर राजनीतिपरकता दिखलाई पड़ती है। साठोत्तरी कवि के लिए राजनीत जीवन्त सच्चाई रही है, लेकिन इस राजनीति ने उसे राहत देने की अपेक्षा आहत अधिक किया है। 'नेहरु' के शासन की आलोचना करते हुए कवि 'नागार्जुन' ने ''तुम रह जाते दस साल और'' लिखा–

''गेरुआ पहनते जयप्रकाश, नर्मदा किनारे बस जाते
डाँगे हो जाते राज्यपाल, लोहिया जेल में बल खाते
गोपालन होते नजरबन्द, राजाजी माथा घुटवाते
जनसंघी अटल बिहारी जी, भिक्षा की झोली फैलाते
चौड़ा होता कुछ भाल और
तुम रह जाते दस साल और
मिल वाले होते सोशलिष्ट, धनपतियों को लेनिन भाता
माओ आकर मिलता तुमसे, पेकिंग दिल्ली से शरमाता।''

कविता में भारतीय राजनीति पर व्यक्ति विशेष की तानाशाही के विरुद्ध चेतावनी के साथ ही मनमाना यूरोपियन समाजवाद भी दर्शाया गया है। इस भृष्ट राजनीतिक व्यवस्था में न्यायपालिका पैसे के हाथों बिकी हुई है, इसलिए 'धूमिल' अपनी कविता में लिखते हैं–

''शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का
हलफनामा है।''

रघुवीर सहाय नागरिक अधिकार, संसदीय जनतंत्र और दक्षिणपंथी से लेकर वामपंथी राजनीतिक दल सभी का विरोध करते हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने भी अनेक राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं– 'कुआनो नदी' नामक अपने संग्रह की 'कुआनो नदी के पार' नामक कविता में वर्तमान राजनीति का विरोध किया है। 'एक बस्ती जल रही है' नामक कविता में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी लिखते हैं–

''एक बस्ती जल रही है
और सारी दुनिया
कुँए की जगत पर पाँव पसारे बैठी है।''

धूमिल, कुमारेन्द्र, वेणु गोपाल, अरुण कमल, पारसनाथ सिंह आदि कवि राजनीतिक विचारों से मार्क्सवादी समझे जाते हैं, परन्तु इनमें से किसी ने भी मार्क्सवादी दृष्टि से राजनीति को जबरन जोड़ने का प्रयास नहीं किया है। 'संसद से सड़क तक' की एक कविता 'बीस साल बाद' में धूमिल कहते हैं–

''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।''

इसलिए 'धूमिल' जनता की राजनीतिक चेतना को झझोड़ते हुए कहते हैं–

चुनाव ही सही इलाज है, क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से
किसी हद तक 'कम–से–कम' बुरे को चुनते हुए
न उन्हें मलाल है न भय है
न लाज है।

राजनीतिक क्षेत्र में भृष्टाचार का मुख्य दोषी नेतृत्व–वर्ग है। चापलूसी करने वालों के साथ ही उनकी सहानुभूति है। स्वार्थपरता ही मानों उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। कवि उनके इस घृणित रूप को उजागर करता हुआ कहता है–

''जब से नेता जी के हाथों में आयी है सत्ता
बढ़ गया है उनके दौर का भत्ता
उनके निर्वाचन क्षेत्र में तो उनकी मर्जी के बगैर

हिलात नहीं एक भी पत्ता
चपरासी से लेकर
कलेक्टर तक के तबादले में
उनकी दखलन्दाजी है
मक्खन न लगाने वालों से
उन्हें खास नाराजगी है।''

जन–जन के कल्याण की कामना व व्यवस्था करने वाला शासन ही जनतंत्र है। ऐसा शासन ऐश्वर्य और विलास का स्थान नहीं, राष्ट्र की लाखों करोड़ों जनता के दुःख, अभाव, अन्याय को नष्ट करने के लिए यज्ञस्थल होता है। राष्ट्र के सम्पूर्ण अभ्युदय के लिए जनतंत्रीय व्यवस्था होती है। भारत में इसी व्यवस्था को अपनाया गया है। इस व्यवस्था के बावजूद जनता की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। धर्मवीर भारती जी लिखते हैं–

''हम जैसे पहले थे
वैसे अब भी हैं
शासन बदले
स्थितियाँ बिल्कुल वैसी ही हैं।''

समकालीन हिन्दी कवियों की संवेदना मूलतः राजनीतिक एवम् सामाजिक संवेदना ही है। मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव, महँगाई, अन्याय, अत्याचार, भृष्टाचार, गरीबी, दोषपूर्ण शिक्षा, भृष्ट पुलिस, संदिग्ध न्याय, निरर्थक स्वतंत्रता और धार्मिक विकृतियों तथा व्यावसायिक सभ्यता ने कवियों को अत्यन्त चिन्तित किया। साठोत्तरी कवियों ने राजनीतिक स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए उसके लिए जिम्मेदार लोगों को बेनकाब किया है और अपनी कविताओं के माध्यम से इनके विरुद्ध विद्रोह का आव्हान किया है। स्वार्थी नेताओं जिन्होंने धन और कुर्सी के मोह में लोकतंत्र को विकृत किया और कह रहे हैं, जनता की इस पिछड़ी हुई चेतना से कवि टकराता है, खीझता है, तरस खाता है और भरसक उसे जनतंत्र रूपी इस भ्रमजाल से मुक्त करवाने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से जनता की राजनीतिक चेतना को उभारने की कोशिश करता है।

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीतिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। कवि अपनी बहुमूल्य कृतियों के माध्यम से राजनीति एवम् समाज में चेतना, जागृति करने का ही कार्य करता है। कविता के माध्यम से वह उदात्त और परिष्कृत मानवीय संवेदनाओं की भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है। राजनीतिक चेतना के लिहाज से समकालीन हिन्दी कवियों का काव्य काफी महत्वपूर्ण जान पड़ता है। इसलिए इनमें समस्त चेतना एक साथ साकार होती है। वे अतीत की उज्जवल परम्परा को मथते हैं, उनमें राजनीतिक चेतना की गहरी सोच विद्यमान है, इसी कारण उनकी कविताएँ वर्तमान की पुकार से सचेत क्रान्ति का स्वागत करती हैं।

संदर्भ सूची

1. चुनी हुई रचनाएँ – 'नागार्जुन' खण्ड–2
2. संसद से सड़क तक – 'धूमिल'
3. अ से असभ्यता – दिनकर सोनवलकर
4. अन्धा युग – धर्मवीर भारती
5. समकालीन कविता